24

अष्टाध्यायी का अष्टम अध्याय-2

इस प्रकार आप पूर्वतन पाठो में वैदिक शब्द रूपो की प्रक्रिया को जाना। इस पाठ में स्वरप्रक्रिया को प्रदर्शित करेंगे। ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत ये उच्चारणकाल का बोध कराने वाले स्वर है। ये किस स्वरवर्ण का कितने काल तक उच्चारण करना उचित है यह बोध कराते है। इस अन्तिम पाठ में आदि में प्लुतस्वरविषय में आलोचना करेंगे। तीन मात्रा प्लुत होता है इस पाणिनीयशिक्षा वचन से इससे प्लुत की तीन मात्रिक उच्चारणकाल जानना चाहिए। और पाठान्तभाग में सत्व-णत्व-षत्वविषय में आलोचना करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे–

- कब प्लुतस्वर होता है इस विषय को जान पाने में;
- प्लुतस्वरविधायक सूत्रो का परिचय जान पाने में;
- वेद में कब विसर्ग को सकार होता है उसको जान पाने में;
- वेद में कब नकार को णकार होता जान पाने में;
- वेद में कब सकार को षकार होगा उसको जान पाने में।

24.1 ये यज्ञकर्मणि॥ (8.2.88)

सूत्रार्थ– ये इसको यज्ञकर्म में प्लुत होता है।

सूत्रव्याख्या– यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से यज्ञकर्म में ये इसको प्लुत विधान करते

है। इस सूत्र में ये यह प्रथमान्त पद है। यज्ञकर्मणि यह सप्तम्यन्त पद है। कर्मशब्द क्रियावाची है। इसलिए यज्ञकर्मणि इसका यज्ञक्रिया में यह अर्थ है। यज्ञसम्बन्धिक्रिया में। ''वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः'' इस सूत्र से प्लुतः इस पद की अनुवृति है। यज्ञकर्म में ये इसको प्लुत होता है यह सूत्रार्थ होता है। ''अचश्च'' इस परिभाषा के द्वारा ये इसके अच को ही प्लुत होता है।

उदाहरण- येऽऽऽ यजामहे।

सूत्रार्थसमन्वय– श्रौतयज्ञकर्म में जिस मन्त्र से आहुति दी जाती है वह मन्त्र याज्या कहलाते है। यज्ञकर्म में याज्या मन्त्र के आदि में ''येऽऽऽ यजामहे'' इस वाक्य का प्रयोग करते है। इसलिए यज्ञकर्म में प्रयुक्त होने से ये इसके एकार को प्रकृतसूत्र से प्लुत का विधान करते है।

विशेष- यदि यज्ञकर्म नहीं होता है तो ये इसके अच को प्लुत प्रकृतसूत्र से नहीं होता है। जैसे स्वाध्यायकाल में ''ये यजामह इति पञ्चाक्षरम्'' इत्यादि ये इसको प्लुत नहीं होता है।

24.2 अग्नीत्प्रेषणे परस्य च (8.2.92)

सूत्रार्थ– अग्नीध के प्रेषण में आदि को प्लुत और उससे परे को भी होता है।

सूत्रव्याख्या– यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से प्लुत को विधान करते है। इस सूत्र में तीन पद है। अग्नीत्प्रेषणे परस्य च यह सूत्रगत पदच्छेद है। अग्नीत्प्रेषणे यह सप्तम्यन्त पद है। अग्नीधः प्रेषणमिति अग्नीत्प्रेषणम्, तस्मिन् अग्नीत्प्रेषणे इति। परस्य यह षष्ठ्यन्त पद है। च यह अव्ययपद है। ब्रूहिप्रेष्यशौषड्वौषडावहानामादेः इस सूत्र से आदेः इस पद की, ये यज्ञकर्मणि इस सूत्र से यज्ञकर्मणि इस पद की अनुवृति है। वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः इस सूत्र से प्लुतः इस पद की अनुवृति से उससे तेन अचश्च इस परिभाषा के द्वारा अचः यह भी प्राप्त होते है। उससे सूत्र का अर्थ होता है अग्नीध के प्रेषण में आदि के अच को प्लुत और उससे परे को भी प्लुत होता है यज्ञकर्म में। आग्नीध्राख्य को ऋत्विज के प्रति अध्वर्यु प्रेषण में अर्थात् उसके प्रति उपदेश वाक्य में अथवा निर्देश वाक्य में आदि अच को, उससे (आदिभूत से) परे अच को प्लुत होता है यह सरलार्थ है।

उदाहरण– ओ3श्रा3वय इति।

सूत्रार्थसमन्वय- ओऽऽऽश्राऽऽऽवय इस आग्नीध्राख्य ऋत्विज के प्रति अध्वर्यु के निर्देशवाक्य को। उससे यहाँ आदि अच के ओकार को और उससे परे अच आकार को (श्रा-इसके) इस सूत्र से प्लुत होता है।

विशेष- सूत्र में प्रेषणे यह कहा है की उससे भिन्न व्यापार में प्लुत नहीं होता है। जैसे- अग्नीदग्नीन् विहर, इत्यादि में और बहिस्तृणोहि इत्यादि में प्लुत नहीं होता है।

यज्ञ कर्मणि इसके कहने से यज्ञकर्म भिन्न स्थल में प्लुत नहीं होता है, उससे आश्रावयास्तश्रौषट् इत्यादि में प्लुत नहीं होता है।

24.3 विभाषा पृष्टप्रतिवचने हेः॥ (8.2.93)

सूत्रार्थ– पूछे हुए प्रश्न के प्रत्युतर में हि को विकल्प से प्लुत होता है।

सूत्रव्याख्या– यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से प्लुत का विधान करते है। इस सूत्र में तीन पद है। विभाषा यह प्रथमा एकवचनान्त, पृष्टप्रतिवचने यह सप्तमी एकवचनान्त, हेः यह षष्ठी एकवचनान्त पद। विभाषा इसका विकल्प से यह अर्थ है। पृष्टप्रतिवचने यहाँ पर पृष्टस्य प्रतिवचनम् आख्यानं पृष्टप्रतिवचनं, तस्मिन् इति षष्ठीतत्पुरुष। वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः इस सूत्र से प्लुतः इस पद की अनुवृति है, उस अचश्च इस परिभाषा के द्वारा अचः यह प्राप्त होता है। इसी प्रकार सूत्र का अर्थ होता है पृष्ट के प्रतिवचन में (प्रत्युत्तर में) हि के अच को विकल्प से प्लुत होता है।

उदाहरण– इसका उदाहरण है अकार्षं हि3, अकार्षं हि इति च।

सूत्रार्थसमन्वय- अकार्षीः कटम् ऐसे पूछने पर प्रश्न का उत्तर होता है अकार्षं हि इति। उससे यहाँ प्रत्युत्तरवाक्य में हि के अच इकार को विकल्प से प्लुत होता है। इसी प्रकार प्लुतपक्ष में अकार्षं हि3 इसके अभावपक्ष में अकार्षं हि यह होता है।

विशेष- सूत्र में पृष्टप्रतिवचन में कहने से प्रत्युत्तर भिन्नवाक्य में हि अच को प्लुत नहीं होता है, उससे कट को करोगे हि इत्यादि में सामान्यवाक्य में हि को प्लुत नहीं होता है। सूत्र में हि ऐसा कहने से करता हूँ इत्यादि में प्रत्युत्तर होने पर भी हिभिन्न ननु-इत्यादि को प्लुत नहीं होता है।

24.4 आम्रेडितं भर्त्सने॥ (8.2.95)

सूत्रार्थ– भर्त्सन में आम्रेडित को प्लुत होता है।

सूत्रव्याख्या– यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से प्लुत का विधान करते है। इस सूत्र में दो पद है। आम्रेडितम् यह प्रथमा एकवचनान्त, भर्त्सने यह सप्तमी एकवचनान्त। वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः इस सूत्र से टेः इस और प्लुतः इसकी अनुवृति है, प्लुत इसकी आम्रेडितम् इसका विशेषण, उससे उसकी नपुंसकत्व। प्लुतः इसकी अनुवर्त से अचश्च इस परिभाषा के अच को यह भी प्राप्त होता है। भर्त्सन नाम अपकार शब्द के द्वारा भय उत्पादन को। तस्य परमाम्रेडितम् इस सूत्र से कहा की आम्रेडितम इसको ग्रहण नहीं करना चाहिए। यहाँ आम्रडितपद को पूर्व और परे दोनों का उपलक्षणार्थ है। अमरकोष में भी कहा की आम्रेडित को दो बार कहा गया। उससे सूत्र का अर्थ होता है भर्त्सन अर्थ में आम्रेडित के (पूर्व और परे को) टी के अच को प्लुत होता है।

टिप्पणी

उदाहरण– इसका उदाहरण होता है दस्योऽऽऽ दस्योऽऽऽ घातयिष्यामि त्वाम् इति।

सूत्रार्थसमन्वय– यहाँ वाक्य आदि के आमन्त्रित असूय असम्मति कोप कुत्स्न भर्त्सन में इससे भर्त्सन अर्थ गम्यमान में दस्युशब्द को द्वित्व होता है। उन दोनों दस्यु के टी के अच ओकार को प्रकृतसूत्र से प्लुत होता है।

24.5 अङ्गयुक्तं तिङाकाङ्क्षम्॥ (8.2.96)

सूत्रार्थ– छन्द में भर्त्सन में अङ्गयुक्त तिङाकाङ्क्ष को प्लुत होता है।

सूत्रव्याख्या– यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से प्लुत का विधान होता है। इस सूत्र में दो पद है। अङ्गयुक्तम् यह प्रथमान्त, तिङाकाङ्क्षम् यह भी प्रथमान्त पद है। अङ्गयुक्त इसका अङ्गशब्द से युक्त यह अर्थ है। तिङाकाङ्क्षमित्यस्य साकाङ्क्ष तिङ् यह अर्थ है। इस सूत्र में आम्रेडितं भर्त्सने इस सूत्र से भर्त्सने इस, वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः इससे टेः, और प्लुतः इन दो पदों की अनुवृति है। प्लुत इसकी अनुवृति से अचश्च इस परिभाषा के द्वारा अचः यह भी जोड़ा गया है। उससे सूत्रार्थ होता है अङ्गशब्द से युक्त साकाङ्क्ष जो तिङ् उसके टी के अच को प्लुत होता है।

उदाहरण– यह इसका उदाहरण है अङ्ग कूजऽऽऽ इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म इति।

सूत्रार्थसमन्वय- अङ्ग कूज3 इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म इसका यह अर्थ है कि मूर्ख अब अपशब्द कथन के फल को प्राप्त करेगा। यहाँ अङ्ग यह रोषपूर्वक सम्बोधन है। यहाँ कूज यह अब दुष्ट तुझे जान लूंगा इस वाक्य में स्थित ज्ञास्यसि इस तिङन्त पद की आकाङ्क्ष करता है इसलिए कूज यह साकाङ्क्ष तिङ् है। और यह अङ्गशब्द से युक्त है। और यहाँ गम्यमान भर्त्सन और अङ्गशब्द से युक्त साकाङ्क्ष तिङ् कूज यह है, उससे प्रकृतसूत्र से कूज इसके टी के अच को प्लुत होता है।

विशेष- सूत्र में साकाङ्क्षतिङ ग्रहण से अङ्ग देवदत्त मिथ्या वदसि इत्यादि में भर्त्सन अर्थ के होने पर भी अङ्गशब्द से युक्त देवदत्त यह सुबन्त है यहाँ पर प्लुत नहीं होता है।

अङ्ग पच इत्यादि में पच यह तिङन्त स्वार्थ प्रतिपादन में कुछ भी अपेक्षा नहीं करता है, इसलिए यहाँ आकाङ्क्षा के असत्त्व होने से प्रकृतसूत्र से प्लुत नहीं होता है।

भर्त्सना गम्यमान होने पर ही साकाङ्क्षतिङ को प्लुत होता है, उससे अङ्गाधीष्व भक्त तेरो को देता हूँ है (पठ अन्न तुझको देता हूँ) इत्यादि में अधीष्व यह तिङन्त को देता हूँ इस तिङन्त के साथ सम्बन्ध होने पर भी भर्त्सनार्थ के अभाव से प्लुत नहीं होता है।

24.6 पूर्वं तु भाषायाम्॥ (8.2.98)

सूत्रार्थ– विचार्यमानो के टी को प्लुत होता है।

सूत्रव्याख्या– यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से प्लुत का विधान करते है। इस सूत्र में तीन पद है। पूर्वम यह प्रथमा एकवचनान्त, तु यह अव्ययपद, भाषायाम यह सप्तमी एकवचनान्त। विचार्यमाणानाम् इस सूत्र सेविचार्यमाणानाम इस पद की अनुवृति है। वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः इस सम्पूर्ण की भी यहाँ इस सूत्र में अनुवृति है। प्लुतः इसकी अनुवृति से अचश्च इस परिभाषा के द्वारा अच यह भी प्राप्त होता है। भाषायाम इसका लौकिक संस्कृत में यह अर्थ है। पूर्वम का पूर्व विद्यमान यह अर्थ है। उससे लौकिक संस्कृत में विचार्यमानो का (वाक्यो का) मध्य में पूर्व विद्यमान जो वाक्य उसके टी के अच को प्लुत होता है, और उसको उदात्तस्वर होता है यह सूत्र का आशय है। यहाँ वाक्य में जिसका पूर्व प्रयोग उसके ही पूर्वत्व को जानना चाहिए।

उदाहरण– अहिर्नु३३३ रज्जुर्नु।

सूत्रार्थसमन्वय– इसका उदाहरणवाक्य सर्पो वा रज्जुर्वा इत्यर्थ। नु यह वितर्क अर्थ में अव्यय। यहाँ विचार्यमाण वाक्यो के मध्य में पूर्व विद्यमान जो अहिर्नु इस वाक्य के टी के अच उकार की इस सूत्र से प्लुत और उदात्तस्वर होता है।

विशेष- इस सूत्र से पूर्व सूत्र है विचार्यमाणानाम् इति, उससे भी यह ही कार्य होता है। परन्तु इस सूत्र में भाषायाम् यह पद है, उस पूर्व सूत्र को वैदिकप्रयोग विषय में प्रवृत्त है और इससे लौकिक प्रयोग विषय में प्रवृत्त है ऐसा जानना चाहिए।

24.7 अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः॥ (8.2.100)

सूत्रार्थ- अनुदात्त प्लुत हो।

सूत्रव्याख्या– यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से प्लुत को अनुदात्त स्वर का विधान करते है। इस सूत्र में दो पद है। अनुदात्तम यह प्रथमा एकवचनान्त विधायक पद है। प्रश्नान्ताभिपूजितयोः यह सप्तमी द्विवचनान्त पद है। वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः इससे वाक्यस्य टेः प्लुतः इन तीन पद की यहाँ अनुवृति है। प्लुत की अनुवृति से अचश्च इस परिभाषा के द्वारा अच की भी प्राप्ति होती है। प्रश्न शब्द का प्रश्नार्थ वाक्य को यह अर्थ, तस्य अन्तः प्रश्नान्तः इति षष्ठीतत्पुरुषः प्रश्नार्थ वाक्य के अन्तिम को यह अर्थ है। अभिपूजित शब्द का सत्कार यह अर्थ। उससे सूत्र का अर्थ होता है प्रश्नार्थक और सत्कारार्थक वाक्य के अन्त टी प्लुत अच को अनुदात्तस्वर होता है। वहाँ प्रश्नार्थ वाक्य में अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः इस सूत्र से विहित प्लुत को, अभिपूजितार्थे, वाक्ये च दूराद्धूते च इत्यादि से विहित प्लुत को इस सूत्र से अनुदात्तस्वर होता है।

उदाहरण– यहाँ प्रश्नान्त का उदाहरण है अग्निभूत3इ इति पट3उ इति च। अभिपूजित का उदाहरण शोभनः खल्वति माणवक3 इति है।

सूत्रार्थसमन्वय- अत्र अगमः पूर्वं ग्रामान् अग्निभूते। इति प्रश्नार्थकं वाक्यम्। तस्य अन्तस्य टेः एकारस्य (अ इ) अनन्त्यस्य अकारस्य अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः इत्यनेन प्लुतत्वम्। वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः इत्यनेन प्लुतस्य उदात्तत्वे प्राप्ते, तस्य प्रकृतसूत्रेण अनुदात्तस्वरः, तेन अग्निभूत3इ इति रूपम्। पटो इत्यत्र टेः उकारस्य अनन्त्यस्य अकारस्य अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः इत्यनेन प्लुतत्वम्। वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः इत्यनेन प्लुतस्य उदात्तत्वे प्राप्ते, तस्य प्रकृतसूत्रेण अनुदात्तस्वरः, तेन पट3उ इति रूपम्। शोभनः खल्विति माणवकः इत्यत्र अन्तस्य टेः अचः अकारस्य दूराद्धूते च इत्यनेन प्लुतस्वरः। तस्य प्रकृतसूत्रेण अनुदात्तस्वरः, तेन माणवक3 इति रूपम्।

24.8 उपरिस्विदासीदिति च॥ (8.2.102)

सूत्रार्थः- उपरिस्विदासीत् इसके टी को भी प्लुत अनुदात्त होता है।

सूत्रव्याख्या– ये विधिसूत्र है। इस सूत्र से अनुदात्तस्वर होता है। इस सूत्र में तीन पद है। उपरिस्विदासीत् इति च ये पदच्छेद है। इसमें तीनों पद अव्यय है। इस सूत्र में अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः से अनुदात्तम् पद, वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः सूत्र से वाक्यस्य, टेः और प्लुतः तीन पदों की अनुवृत्ति हुई। अतरू सूत्रार्थ है- उपरिस्विदासीत् वाक्य के टी को भी प्लुत अनुदात्तस्वर होता है।

उदाहरण– उपरिस्विदासीऽद् इति।

सूत्रार्थसमन्वय- 'अधः स्विदासी 3 दुपरिस्विदासी 3 त्' ये ऋग्वेद का मन्त्र है। यहाँ अधः स्विदासी 3 द् एक वाक्य और उपरिस्विदासी 3 द् दूसरा वाक्य है। इस जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व जो तमस् (प्रकृति) था वो स्रष्टा के उपरि(उससे अधिक) था अथवा अल्प था? इस प्रकार यहाँ दो वाक्य है। विचार्यमाणानाम् सूत्र से दोनों वाक्य में टी के अच् के स्थान पर प्लुतस्वर और उदात्त होता है। इस प्रकार उपरिस्विदासीऽद् में प्लुत के अच् को उदात्त को बाध कर प्रकृतसूत्र से अनुदात्तस्वर होता है।

विशेष- सूत्र में उपरिस्विदासीऽद् ग्रहण से अधः स्विदासीऽद् में प्लुत को अनुदात्तस्वर नहीं हुआ।

24.9 अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः। (8.2.105)

सूत्रार्थः-प्रश्न और उत्तर(आख्यान) या वस्तु स्थिति वर्णन होने पर वाक्यस्थ अन्त्य और अनन्त्य पद की टी को भी स्वरित स्वर और प्लुत होता है।

सूत्रव्याख्या- ये विधिसूत्र है। इस सूत्र से प्लुत होता है। इस सूत्र में तीन पद हैं। अनन्त्यस्य

षष्ठ्येकवचनान्त, अपि अव्यय, प्रश्नाख्यानयोः सप्तमीद्विवचनान्त। अन्ते भवः अन्त्यः, न अन्त्यः अनन्त्यः, तस्य अनन्त्यस्य इति नञ्तत्पुरुषसमास अर्थात अन्त्य से भिन्न। प्रश्नश्च आख्यानञ्च प्रश्नाख्याने, तयोः प्रश्नाख्यानयोः इति इतरेतरयोगद्वन्द्वसमासः। इस सूत्र में स्वरितमाम्रेडितेऽसूया-सम्मति-कोप-कुत्सनेषु सूत्र से स्वरितम् पद, **वाक्यस्य टेः** प्लुत उदात्तः सूत्र से वाक्यस्य, टेः और प्लुत इन पदों की अनुवृत्ति हुई। **प्लुतग्रहणाद् अचश्च** परिभाषा से अच् का भी ग्रहण होता है। पदस्य की भी अनुवृत्ति होती है। अनन्त्यस्यापि में अपि शब्द है जिससे अन्त्य का भी ग्रहण होता है। इस प्रकार जैसे अन्त्यस्य है वैसे ही अनन्त्यस्यापि को जानना चाहिये। आख्यान कथन उत्तर को कहते है। इस सूत्र का सरलार्थ होता है प्रश्न और उत्तर(आख्यान) या वस्तुस्थितिवर्णन होने पर वाक्यस्थ अन्त्य और अनन्त्य पद की टी को भी स्वरितस्वर और प्लुत होता है।

उदाहरण- इसका उदाहरण है -**प्रश्ने**- अगमः3 पूर्वाऽन् ग्रामाऽन् इति, **आख्याने**- अगम3म् पूर्वा3न् ग्रामा3न् इति।

सूत्रार्थसमन्वय- अगमरू3 पूर्वा3न् ग्रामा3न् का अर्थ क्या तु पूर्व के ग्रामों में गया? ये प्रश्नार्थक वाक्य है अतः यहाँ अन्त्यपद और अन्त्यभिन्न पदों के टि के अच् के स्थान पर प्रकृतसूत्र से स्वरितस्वर और प्लुत होता है। अगमऽम् पूर्वाऽन् ग्रामाऽन् अर्थात् हाँ, मैं पूर्व के ग्रामों में गया, ये उत्तरार्थक वाक्य है। अतः यहाँ भी पूर्ववद् अन्त्यस्य पद और अन्त्यभिन्न पदों के टि के अच् के स्थान पर प्रकृतसूत्र से स्वरितस्वर और प्लुत होता है।

विशेषः- यद्यपि प्रश्नार्थवाक्य के अन्त्य पद के टि के अच् के स्थान पर अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः से अनुदात्तस्वर और प्लुत होता है फिर भी प्रकृतसूत्र में अपिशब्द से अन्त्यस्यापि के ग्रहण से प्रश्नार्थक वाक्य के अन्त्य के स्थान पर प्रकृतसूत्र से स्वरितस्वर भी होता है। और इस प्रकार विकल्प से प्रश्नान्त के में स्वरितस्वर और अनुदात्तस्वर होता है।

24.10 दीर्घादटि समानपादे॥ (8.3.9)

सूत्रार्थः- ऋग्वेद मन्त्रों में एक पाद में दीर्घ वर्ण से उत्तर नकारान्त पद को रु विकल्प से होरा है अट्प्रत्याहार के वर्ण के परे रहते संहिता विषय में।

सूत्रव्याख्या– ये विधिसूत्र है। इस सूत्र से नकारान्त पद को रु होता है। इस सूत्र में तीन पद है। दीर्घात् पञ्चम्यन्त, अटि सप्तम्यन्त, समानपदे सप्तम्यन्तपद है। अट् प्रत्याहार है। समानश्च असौ पादश्च समानपादः, तस्मिन् इति कर्मधारयसमासः। यहाँ समानपादे का अर्थ एकपाद में है। यहाँ, **उभयथर्क्षु** से उभयथा और ऋक्षु दो पद, **नश्छव्यप्रशान्** से नः षष्ठ्यन्तपद, **मतुवसो रु संबुद्धौ छन्दसि** से रुः प्रथमान्तपद, **तयोर्य्वावचि संहितायाम्** से संहितायाम् पदों की अनुवृत्ति हुई। उभयथा का अर्थ उभय है (एक पक्ष में रु दुसरे

पक्ष में नकार)। ऋक्षु अर्थात् ऋग्वेद के मन्त्रों में। अतरू इसका सरलार्थ होता है कि ऋग्वेदमन्त्रों में एक पाद में दीर्घ वर्ण से उत्तर नकारान्त पद को रु विकल्प से होरा है अट्प्रत्याहार के वर्ण के परे रहते संहिताविषय में।

उदाहरण– देवाँ अच्छा सुमती (ऋ.4.1.2), महाँ इन्द्रो य ओजसा (ऋ.8.6.1)।

सूत्रार्थसमन्वय– रुत्वपक्ष में देवान् अच्छा इस स्थिति में, महान् इन्द्रो में ऋमन्त्र के एक पाद में ही दीर्घ से उत्तर नकारान्त पद को, उससे पर में अट्प्रत्याहारस्थवर्ण के विद्यमान होने से संहिता विषय में नकार के स्थान पर रुत्व होने पर आतोऽटि नित्यम् से रु के पूर्व अच् के अनुनासिक होने पर भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि से रु को यादेश और लोपः शाकल्यस्य से उसका लोप होने पर देवाँ अच्छा और महाँ इन्द्रो दो रूप सिद्ध होते है। इस सूत्र के वैकल्पिक होने से रुत्वाभावपक्ष में संयोग होने पर देवानच्छ और महानिन्द्रो भी रूप होगा।

विशेष- वाक्य में संहिता (सन्धि) करना इच्छाधीन होती है। अतः वाक्य में संहिता विवक्षा में ही होगी। अविवक्षा अर्थ में तो संहिता का अभाव। इस प्रकार इस सूत्र का वैकल्पिकत्व तो सिद्ध ही है, फिर भी पूर्वसूत्र से उभयथा पद के ग्रहण से वैकल्पिकत्व विधान से कहीं पर रुत्व नहीं होता है, तेन आदित्यान् याचिषामहे यहाँ सूत्रोक्त सभी विषयों के होने पर भी नकारान्त पद को रुत्व नहीं होता है।

पाठगत प्रश्न-24.1

1. ये यहाँ कब प्लुतस्वर होता है?
2. अग्नीधः प्रेषणे इसमे प्रेषणे शब्द का क्या अर्थ है?
3. हि शब्द को प्लुतस्वर कब होता है?
4. किस अर्थ में आम्रेडित को प्लुतस्वर होता है?
5. किस शब्द से युक्त तिङन्त पद च्युत हो जाता है?
6. भाषायाम् शब्द का क्या अर्थ है?
7. अभिपूजितशब्द का क्या अर्थ है?
8. अनन्त्यस्यान्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः में अपिशब्द से किसका ग्रहण किया है?
9. वेद में दीर्घ से उत्तर नकारान्त पद को रुत्व विधायक सूत्र कौन सा है?

टिप्पणी

24.11 आतोऽटि नित्यम्॥ (8.3.3)

सूत्रार्थः– अट् के परे रहते रु से पूर्व आकार के स्थान पर नित्य अनुनासिक आदेश होता है।

सूत्रव्याख्या– ये विधिसूत्र है। इस सूत्र से अनुनासिक स्वर होता है। इस सूत्र में तीन पद है। आतः षष्ठ्यन्त पद है। अटि सप्तम्यन्त पद है। नित्यम् प्रथमान्त पद है। आतः का अर्थ आकार है। अट् प्रत्याहार है। यहाँ **अनुनासिक पूर्वस्य तु वा** सूत्र से अनुनासिकः और पूर्वस्य दो पद, **मतुवसो रु संबुद्धौ छन्दसि** से रुः, **तयोर्य्वावचि संहितायाम्** से संहितायाम् पद की अनुवृत्ति हुई। अतरू सूत्रार्थ होता है– रु से पूर्व आकार के स्थान पर नित्य अनुनासिक स्वर होता है यदि पर में अट्प्रत्याहारस्थवर्ण हो तो।

उदाहरण– महाँ इन्द्रो य ओजसा इति।

सूत्रार्थसमन्वय- महान् इन्द्रः इसमें **दीर्घादटि समानपादे** से नकार के स्थान पर रुत्व होता है। फिर महारु इन्द्रः इस स्थिति में प्रकृतसूत्र से रु से पूर्व आकार के स्थान पर नित्य अनुनासिक स्वर होता है, पर में अट्प्रत्याहारस्थवर्ण इकार के होने से। फिर **भोभगोअघोअपूर्वस्य** योऽशि से र के स्थान पर यादेश होकर **लोपः शाकल्यस्य** से यकार के लोप होने पर महाँ इन्द्रः सिद्ध होता है।

विशेष- यहाँ **अनुनासिकः पूर्वस्य तु वा** से र से पूर्व आकार के स्थान पर विकल्प से अनुनासिकस्वर प्राप्त है परन्तु उसको बाधकर प्रकृतसूत्र से रु से पूर्व नित्य अनुनासिक स्वर होता है। परन्तु फिर भी तैतिरीयशाखाध्यायी महान् इन्द्रः में अनुस्वार (महां) पढ़ते है। यहाँ अनुस्वार कथं सिद्ध होता है लेकिन **व्यत्ययो बहुलम्** सूत्र से व्यत्यय होता है। इस प्रकार यहाँ पुनः विकल्प विधान से प्रकृतसूत्र से नित्य अनुनासिक विधान व्यर्थ हो जाता है इसलिए प्रकृतसूत्र का प्रयोजन चिन्तन करने योग्य है।

24.12 छन्दसि वाऽप्राम्रेडितयोः॥ (8.3.49)

सूत्रार्थः- वेद में विसर्ग के स्थान पर सकार विकल्प से होता है यदि कवर्ग या पवर्ग पर में हो तो परन्तु यदि पर में प्रशब्द या आम्रेडितम् हो तो नहीं होता है।

सूत्रव्याख्या- ये विधिसूत्र है। इस सूत्र से विसर्ग को सकार आदेश होता है। इस सूत्र में तीन पद है– छन्दसि, वा, अप्राम्रेडितयोः। छन्दसि सप्तम्येकवचनान्त, वा अव्ययपदम्, अप्राम्रेडितयोः सप्तमीद्विवचनान्त पद। छन्दसि का अर्थ वेद विषय में। प्रश्च आम्रेडितञ्च प्राम्रेडिते, न प्राम्रेडिते अप्राम्रेडिते, तयोः अप्राम्रेडितयोः। अर्थात् प्रशब्द और आम्रेडितशब्द को छोड़कर। आम्रेडितशब्द का अर्थ द्विरुक्ति है। इस सूत्र में विसर्जनीयस्य सः सम्पूर्ण सूत्र अनुवर्तित है। विसर्जनीयशब्द का अर्थ विसर्ग है। क पौ च कुपू तयोः कुप्वोः सप्तम्यन्त है, **तयोर्य्वावचि संहितायाम्** से संहितायाम् पदों की अनुवृत्ति हुई। कुशब्द का अर्थ

कवर्ग है, पुशब्द का पवर्ग। सूत्र का आशय है कि वेद में विसर्ग के स्थान पर सकार विकल्प से होता है यदि कवर्ग या पवर्ग पर में हो तो परन्तु यदि पर में प्रशब्द या आम्रेडितम् हो तो नहीं होता है।

उदाहरण– अग्ने त्रातर्ऋतस्कविः इति गिरिर्न विश्वतस्पृथुः इति च।

सूत्रार्थसमन्वय– त्रातः कविः में कवर्गस्थवर्ण पर में है, जिससे विसर्ग के स्थान पर विकल्प से सकार होकर त्रातस्कविः रूप बना। ऐसे ही विश्वतः पृथुः में पवर्गस्थवर्ण पर में है, जिससे विसर्ग के स्थान पर विकल्प से सकार होकर विश्वतस्पृथुः रूप बना।

विशेष- इस सूत्र से विकल्प से सकार होता है। कहीं पर विसर्ग के स्थान पर सकार प्रयुक्त होता है और कहीं विसर्ग ही एव प्रयुक्त होता है। इस प्रकार वसुनः पूर्व्यस्पतिः (ऋग्वेद:10.48.1) में यद्यपि पवर्गस्थवर्ण पर में है। किन्तु यदि प्रशब्द पर में हो तो विसर्ग के स्थान पर सकार नहीं होता है। जैसे अग्निः प्र विद्वान् (अथर्ववेदः 5.26.1) यहाँ प्रशब्द के परे रहते विसर्ग के स्थान पर सकार नहीं होगा। आम्रेडित यदि पर में हो तो भी विसर्ग के स्थान पर सकार नहीं होता है। जैसे पुरुषः पुरुषः परि यहाँ द्वितीय पुरुष शब्द **की तस्य परमाम्रेडितम्** से आम्रेडितसंज्ञा होती है। वो आम्रेडितसंज्ञक पुरुषशब्द पर में है अतः विसर्ग के स्थान पर सकार नहीं होगा।

24.13 कःकरत्करतिकृधिकृतेष्वनदितेः॥ (8.3.50)

सूत्रार्थः– विसर्ग के स्थान पर सकार हो।

सूत्रव्याख्या– ये विधिसूत्र है। इस सूत्र से विसर्ग के स्थान पर सकार होता है। इस सूत्र में दो पद है। कःकरत्करतिकृधिकृतेषु सप्तमीबहुवचनान्त, अनदितेः षष्ठ्येकवचनान्त पद है। कस् च करत् च करतिश्च कृधिश्च कृतश्च कःकरत्करतिकृधिकृताः तेषु कःकरत्करतिकृधिकृतेषु इति। न अदिति अनदितिः तस्य अनदितेः। अर्थात् अदितिशब्द के विसर्ग को छोड़कर। **छन्दसि वाप्राम्रेडितयोः** सूत्र से छन्दसि की अनुवृत्ति हुई। छन्दसि का अर्थ वेद विषय में। यहाँ विसर्जनीयस्य सः सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति हुई। विसर्जनीयशब्द का अर्थ विसर्ग है। **तयोर्य्वावचि संहितायाम्** सूत्र से संहितायाम् पद की अनुवृत्ति हुई। अतः सूत्रार्थ हुआ– वेद में संहिता विषय में विसर्ग के स्थान पर सकार होता है कः, करत्, करति, कृधि, कृत के परे रहते अदिति शब्द के विसर्ग के स्थान पर सकार नहीं होता है।

उदाहरण–'प्रदिवो अपस्कः', 'यथा नो वस्यसस्करत्', 'सुपेशसस्करोति', 'उरुणस्कृधि', 'सोमं न चारु मघवत्सु नस्कृतम्'।

सूत्रार्थसमन्वय– कृ धातु से लुङ्लकार में प्रथमा एकवचन में वेद में कः और करत् दो रूप होते है, लट में करति, लोट में कृधि रूप बनते है। कृ धातु से क्तप्रत्यय

और विभक्ति होकर कृतम् रूप बना। इस प्रकार अपः कः, वस्यसः करत्, सुपेशसः करति, उरुणः कृधि, नः कृतम् इन स्थितियों में प्रकृतसूत्र से सर्वत्र विसर्ग के स्थान पर सकार होता है।

विशेषः- प्रकृतसूत्र में अनदितेः के पाठ होने से अदितिशब्द के विसर्ग के स्थान पर कःकरत्करतिकृधिकृत के परे रहते हुए भी सकारादेश नहीं होता है। जैसे नो अदितिः करत् इत्यादि मन्त्र में अदितिः करत् में विसर्ग के स्थान पर सकार नहीं हुआ।

24.14 पातौ च बहुलम्॥ (8.3.52)

सूत्रार्थः- छन्दसि पञ्चम्याः विसर्गस्य सः स्यादुपरिभवार्थे परिशब्दे परतः।

सूत्रव्याख्या– ये विधिसूत्र है। इस सूत्र से विसर्ग के स्थान पर सकार होता है। इस सूत्र में तीन पद है। पातौ ये सप्तम्यन्त पद है और च अव्ययपद है। बहुलम् प्रथमान्त पद है। इस सूत्र में **पञ्चम्याः परावध्यर्थे** सूत्र से पञ्चम्याः पद, **छन्दसि वाऽम्रेडितयोः** सूत्र से छन्दसि पद, **सोऽपदादौ** से सः प्रथमान्त पद, **तयोर्य्वावचि संहितायाम्** सूत्र से संहितायाम् सप्तम्यन्तपदों की अनुवृत्ति हुई। विसर्जनीयस्य की भी अनुवृत्ति हुई। छन्दसि का अर्थ वेद विषय में। संहिताशब्द सन्धि के अर्थ में। अतःसूत्रार्थ होता है कि– वेद में संहिता विषय में पञ्चमी के विसर्ग को सकारादेश होता है यदि पर में पाधातु हो तो।

उदाहरण– सूर्यो नो दिवस्पातु।

सूत्रार्थसमन्वय- सूर्यो नो दिवस्पातु (ऋ.10.158.1) इस मन्त्रांश में दिवः पञ्चम्यन्त है, उसके परे पा धातु का रूप पातु है, उस पञ्चम्यन्त दिवः के विसर्ग के स्थान पर सकार होने पर दिवस्पातु रूप बना।

विशेषः- सूत्र में बहुलम् पद है। बहुल के ग्रहण से सभी जगह प्राप्ति का निषेध होता है। अर्थात् कहीं- कहींनहीं भी होता है। कहीं पाधातु के परे रहते हुए भी पञ्चमी के विसर्ग के स्थान पर सकार नहीं होता है। इसका उदाहरण है परिषदः पातु, यहाँ पञ्चमी के विसर्ग के स्थान पर सकार नहीं होगा।

24.15 षष्ठ्याः पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु॥ (8.3.53)

सूत्रार्थः– वेद विषय में पति, पुत्र, पृष्ठ, पार, पद, पयस् पोष के परे रहते षष्ठ्यन्तपद के विसर्जनीय के स्थान पर सकार आदेश होता है।

सूत्रव्याख्या– ये विधिसूत्र है। इस सूत्र से विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश होता है। सूत्र में दो पद है। षष्ठ्याः षष्ठ्येकवचनान्त पद और पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु सप्तमी

टिप्पणी

बहुवचनान्त पद है। पतिश्च पुत्रश्च पृष्ठश्च पारश्च पदञ्च पयः च पोषश्च इति पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषाः, तेषु पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु इति, इनके परे रहते। इस सूत्र में छन्दसि वाऽप्रेडितयोः सूत्र से छन्दसि पद, सोऽपदादौ से सः प्रथमान्तपद, तयोर्य्वावचि संहितायाम् सूत्र से संहितायाम् सप्तम्यन्तपद की अनुवृत्ति हुई। विसर्ग की भी अनुवृत्ति हुई है। छन्दसि का अर्थ वेद विषय में और संहिता शब्द का अर्थ सन्धि है। अतरू सूत्रार्थ है कृवेद में संहिताविषय में षष्ठी विभक्ति के विसर्ग के स्थान पर सकार होता है यदि परे पति, पुत्र, पृष्ठ, पार, पद, पयस् पोष में से कोई भी हो तो।

उदाहरण- वाचस्पतिं विश्वकर्माणम् (ऋ.10.81.7), दिवस्पुत्राय सूर्याय (ऋ.10.17.1), दिवस्पृष्ठं भन्दमानः (ऋ.3.2.12), तमसस्पारमस्य (ऋ.1.92.6), परिवीत इळस्पदे (ऋ. 1.128.1), दिवस्पयो दिधिषाणाः (ऋ.10.114.1), रायस्पोषं यजमानेषु धनम् (ऋ.8.49. 7) इत्येतानि।

सूत्रार्थसमन्वय- वाचस्पतिम् में वाचः पतिम् इस दशा में पतिशब्द पर में है, उससे पूर्व के वाचः षष्ठ्यन्तपद के विसर्ग के स्थान पर इस सूत्र से सकार आदेश हुआ। दिवस्पुत्राय में दिवः पुत्राय इस दशा में पुत्रशब्द पर में है, जिससे पूर्व के दिवः षष्ठ्यन्तपद के विसर्ग के स्थान पर इस सूत्र से सकार होगा। दिवस्पृष्ठम् में दिवः पृष्ठम् इस दशा में यहाँ पृष्ठशब्द पर में है, उससे पूर्व दिवः षष्ठ्यन्तपद के विसर्ग के स्थान पर इस सूत्र से सकार आदेश हुआ। तमसस्पारम् में तमसः पारम् इस दशा में यहाँ पारशब्द पर में है, उससे पूर्व तमसः षष्ठ्यन्तपद के विसर्ग के स्थान पर इस सूत्र से सकार हुआ। परिवीत इळस्पदे इस मन्त्रांश के इळस्पदे में इडः पदे इस दशा में यहाँ पदशब्द पर में है, उससे पूर्व इळः षष्ठ्यन्तपद के विसर्ग के स्थान पर इस सूत्र से सकार आदेश हुआ। दिवस्पयः में दिवः पयः दशा में यहाँ पयस्-शब्द पर में है, उससे पूर्व दिव षष्ठ्यन्तपद के विसर्ग के स्थान पर इस सूत्र से सकार होता है। रायस्पोषम् में रायः पोषम् दशा में यहाँ पोषशब्द पर में है, उससे पूर्व रायः षष्ठ्यन्तपद के विसर्ग के स्थान पर इस सूत्र से सकार आदेश होता है।

विशेषः- प्रकृतसूत्र में षष्ठ्यन्तपद के ही विसर्ग के स्थान पर सकार कहा है। जिससे मनुः पुत्रेभ्यः दायम् में मनुशब्द प्रथमान्त है, उससे परे पुत्रशब्द के विद्यमान रहते हुए भी पूर्व के विसर्ग के स्थान पर सकार नहीं हुआ।

24.16 इडाया वा॥ (8.3.54)

सूत्रार्थः– वेद विषय में पति, पुत्र, पृष्ठ, पार, पद, पयस् पोष प्रे रहते षष्ठ्यन्त पद के विसर्जनीय के स्थान पर विकल्प से सकार होता है।

सूत्रव्याख्या– ये विधिसूत्र है। इस सूत्र से विसर्ग के स्थान पर सकार होता है। सूत्र में दो पद है। इडायाः षष्ठ्यन्तपद और वा अव्ययपद है। इस सूत्र में **छन्दसि वाऽप्रेडितयोः**

सूत्र से छन्दसि पद, **सोऽपदादौ** से सः प्रथमान्तपद, **तयोर्य्वावचि संहितायाम्** सूत्र से संहितायाम् सप्तम्यन्त पद, **षष्ठ्याः पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु** पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु सप्तम्यन्त पद की अनुवृत्ति हुई। विसर्जनीय की भी अनुवृत्ति हुई और उसका अर्थ विसर्ग है। छन्दसि अर्थात वेद विषय में। संहिता शब्द का अर्थ सन्धि है। अतरू सूत्रार्थ होता है– वेद में संहिता के विषय में षष्ठ्यन्तपद इडाशब्द के विसर्ग के स्थान पर सकार विकल्प से होता है यदि पर में पति, पुत्र, पृष्ठ, पार, पद, पयस् पोष में से कोई हो तो।

उदाहरण– इळायास्पुत्रः, इळायाः पुत्रः, इळायास्पदे, इळायाः पदे।

सूत्रार्थसमन्वय– इढायाः पुत्रः, इढायाः पदे में पुत्रशब्द और पदशब्द है, इसलिए प्रकृतसूत्र से षष्ठ्यन्तपद इढाशब्द के विसर्ग के स्थान पर विकल्प से सकार होता है। इसी प्रकार सकारपक्ष में इळायास्पुत्रः, इळायास्पदे में और सकाराभावपक्ष में इळायाः पुत्रः, इळायाः पदे रूप होते है।

वार्तिक– निसस्तपतावनासेवने।

वार्तिकार्थ– निस् के सकार के स्थान पर मूर्धन्य आदेश हो।

वार्तिकव्यख्या– निसः षष्ठ्यन्तपद, तपतौ सप्तम्यन्तपद, अनासेवने सप्तम्यन्तपद। तपति से श्तिप धातु का निर्देश है। आसेवनं नाम पुनः पुनः करने का है। न आसेवनम् अनासेवनम् तस्मिन् इति अनासेवने, पुनः पुनः नहीं करने के अर्थ में। इस प्रकार पुनः पुनः अकरण अर्थ में निस् के सकार के स्थान पर मूर्धन्यादेश होता है यदि पर में तप्-धातु हो तो।

उदाहरण– निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातयः।

वार्तिकार्थसमन्वय– निष्टप्तम् में निस् से पर में तप् धातु का क्तान्त रूप है। निस् के सकार के स्थान पर प्रकृतवार्तिक से मूर्धन्यादेश होकर **ष्टुना ष्टुः** से तकार के टकार के स्थान पर निष्टप्तम् रूप होता है।

विशेष– वार्तिक में अनासेवने के पाठ होने से पुनः पुनः करण अर्थ में निस् के सकार के स्थान पर मूर्धन्यादेश नहीं होता है। जैसे निस्तपति (पुनः पुनः तपति) में निस् के स ke स्थान पर मूर्धन्यादेश नहीं हुआ।

24.17 सनोतेरनः॥ (8.3.108)

सूत्रार्थः– अनकारान्त सन् धातु के सकार के स्थान पर मूर्धन्यादेश हो।

सूत्रव्याख्या– ये विधिसूत्र है। इस सूत्र से सकार होता है। सूत्र में दो पद है। सनोतेः षष्ठ्यन्त पद और अनः भी षष्ठी में। अविद्यमानो नकारो यस्य स अन्, तस्य अनः। यहाँ सनोतेः इति श्तिप से धातुनिर्देश है। इस सूत्र में **पूर्वपदात्** सूत्र से पूर्वपदात्,

टिप्पणी

स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि सूत्र से छन्दसि, **सहेः साडः सः से** सः षष्ठ्यन्तपद, इण्कोः से इण्कोः, तयोर्य्वावचि संहितायाम् से संहितायाम् पदों की अनुवृत्ति हुई। **नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि** और **अपदान्तस्य मूर्धन्यः** सूत्रों की भी अनुवृत्ति होती है। अनः सनोतेः का विशेषण है, तदन्तविधि से अन्नन्त के स्थान पर सनोतेः इति होता है। अतरू सूत्रार्थ हुआ- वेद में संहिता के विषय में पूर्वपद से उत्तर इण् और कवर्ग के रहते र अन्नन्त वाली सनोतेः धातु के सकार के स्थान पर मूर्धन्यआदेश होता है, नुम्-विसर्जनीय-शर् के व्यवधान होने पर भी।

उदाहरण- गोषा इन्द्रो नृषा असि (ऋ.9.2.10)।

सूत्रार्थसमन्वय- गाः सनोतीति गोषाः। यहाँ गोकर्मक सन् धातु में **जनसनखनक्रमगमो विट्** से विट्प्रत्यय होकर, विट्प्रत्यय का सर्वाहरी लोप होकर सन् के नकार के स्थान पर **विड्वनोरनुनासिकस्यात्** से आकार होने पर गो सा इस स्थिति में प्रकृतसूत्र से इण (गकारोत्तर ओकार से) परक अन्नन्त के स्थान पर सन् धातु से सकार के स्थान पर मूर्धन्यादेश होकर गोषा रूप बना। इस प्रकार नरं सनोति इस विग्रह में नृपूर्वक सन् धातु से पूर्ववद् विट्प्रत्यय और उसका सर्वहारी लोप होकर नकार के स्थान पर आकार होने पर नृ सा इस स्थिति में प्रकृतसूत्र से इण के ऋकार से उत्तर अन्नन्त वाले सनोति के स के स्थान पर मूर्धन्यादेश होकर नृषा रूप सिद्ध होता है।

विशेष- इस सूत्र में अनः से अनकारान्त सन् धातु गृहीत है। गोसनिः में स के स्थान पर ष नहीं हुआ। इसमें गां सनोति विग्रह होने पर गोपूर्वक सन् धातु से वेद विषय में **वनसनरक्षिमथाम्** से इन्प्रत्यय होकर (सन् इन्) गो सनि इस स्थिति में नान्त सन् के नान्त होने से प्रकृतसूत्र से यहाँ स के स्थान पर मूर्धन्यादेश नहीं हुआ।

24.18 छन्दस्यृदवग्रहात्॥ (8.4.26)

सूत्रार्थः-ऋकारान्तादवग्रहात्परस्य नस्य णः।

सूत्रव्याख्या– ये विधिसूत्र है। इस सूत्र से नकार के स्थान पर णकार होता है। सूत्र में दो पद है। छन्दसि सप्तम्येकवचनान्तपद और अवग्रहात् पञ्चम्येकवचनान्तपद है। छन्दसि का अर्थ वेद में है। ऋदवग्रहाद् इत्यस्य ऋच्च असौ अवग्रहश्च ऋदवग्रहः, तस्माद् इत्यर्थः। अवच्छिद्य विच्छिद्य पठ्यते इति अवग्रहः। यहाँ अवग्रह का अर्थ पदपाठ काल में पद को अलग-अलग किया जाने से है। इस प्रकार से संहितापाठ में विच्छेद करके पढ़ने की योग्यता होती है और पदपाठ में विच्छेद करके पढ़ने की योग्यता नहीं होती है। इस सूत्र में **रषाभ्यां नो णः** से नो और णः दो पद, **तयोर्य्वावचि संहितायाम्** से संहितायाम् पद, **पूर्वपदात् संज्ञायामगः** से पूर्वपदात् इन पदों की अनुवृत्ति हुई। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** सम्पूर्ण सूत्र की भी यहाँ अनुवृत्ति हुई। अतरू सूत्रार्थ होता है– वेद में संहिता के विषय में अवग्रहविषय-ऋकारान्तपूर्वपद से उत्तर नकार के स्थान पर णः होता है अट्-कु-पु-आङ्-नुम् इनका व्यवधान होने पर भी।

उदाहरण- नृमणाः, पितृयाणम्।

सूत्रार्थसमन्वय- नृषु मनो यस्य इति विग्रहे नृमणाः इति। यहाँ संहितापाठ में पूर्वपद नृ ऋकारान्त है और उसमें विच्छेद करके पठनयोग्यता भी है। उस अवग्रह ऋकारान्त से परे के नकार के स्थान पर पवर्ग के व्यवधान होने पर भी प्रकृतसूत्र से णकार होता है। इसी प्रकार पितृणां यानम् विग्रह होकर पितृयाणम् भी है। यहाँ संहितापाठ में पूर्वपद पितृ ऋकारान्त है और उसकी विच्छेद करके पठनयोग्यता भी है, अतरू उस अवग्रह ऋकारान्तपद के परे नकार के स्थान पर अट्प्रत्याहारस्थवर्ण के व्यवधान होने पर भी प्रकृतसूत्र से णकार होता है नृऽमनाः पदपाठ में विच्छेद करके पठनयोग्यता नहीं है अतः ऋकारान्त नृ-से परे नकार के स्थान पर णकार नहीं हुआ। इसी प्रकार पितृऽयानम् में भी पूर्ववत् विच्छेद करके पठनयोग्यता नहीं है अतः ऋकारान्त पितृ-पद के बाद के नकार के स्थान पर णकार नहीं हुआ।

पाठगत प्रश्न-24.2

10. वेद में रु के पूर्व आत् के स्थान पर नित्य अनुनासिक किस सूत्र से होता है?
11. अप्राग्रेडितयोः का विग्रह कीजिए।
12. प्रदिवो अपस्कः यहाँ किस सूत्र से विसर्ग के स्थान पर सकार हुआ?
13. अनदितेः में कौन सी विभक्ति है?
14. पञ्चम्यान्तपद में विसर्ग के स्थान पर पकार और तवर्ग के परे रहते सकार किस सूत्र से होता है?
15. पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु का विग्रह वाक्य क्या है?
16. इडायाः वा से किस विसर्ग के स्थान पर सकार होता है?
17. वेद में अन्नन्तपद सनोति के सकार के स्थान पर मूर्धन्यादेश विधायक सूत्र क्या है?
18. वेद में ऋकारान्त अवग्रह से परे नकार के स्थान पर णविधायक सूत्र क्या है?

पाठसार

इस पाठ में अष्टाध्यायी के अष्टमाध्याय के द्वितीयपाद और तृतीयपाद में विद्यमान विशेषसूत्रों की व्याख्या विहित है। प्लुतस्वर, विसर्ग के स्थान पर सत्वविधान, नकार के स्थान पर णकारविधान, स को षत्वविधान आदि कुछ मुख्य विषय यहाँ प्रस्तुत है। प्लुतस्वर कैसे होता है इस विषय में ये यज्ञकर्मणि, अग्नीत्प्रेषणे परस्य च, विभाषा पृष्टप्रतिवचने हेः,

टिप्पणी

आम्रेडितं भर्त्सने, अङ्गयुक्तं तिङाकाङ्क्षम्, पूर्वं तु भाषायाम्, अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः, उपरिस्विदासीदिति च, अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः इन सूत्रों के माध्यम से बताया है। विसर्ग के स्थान पर कैसे सत्वविधान होता है? इस विषय में छन्दसि वाऽप्राम्रेडितयोः, कः करत्करतिकृधिकृतेष्वनदितेः, पातौ च बहुलम्, षष्ठ्याः पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु, इडाया वा इन सूत्रों द्वारा बताया है। सनोतेरनः सूत्र से और निसस्तपतावनासेवने वार्तिक से षत्वविधान कहा है। कैसे रकार के स्थान पर विकल्प से रुत्व होता है, इसको दीर्घादटि समानपादे सूत्र से बताया है। आतोऽटि नित्यम् सूत्र से अट के परे रहते रु से पूर्व आत् के स्थान पर कैसे नित्य अनुनासिक स्वर होता है, वो भी बताया है और कैसे छन्दस्यृदवग्रहात् सूत्र नकार के स्थान पर णत्व करता है इन सब विषयों का इस पाठ में आलोचन किया है।

पाठान्त प्रश्न

1. अग्नीत्प्रषणे परस्य च सूत्र की व्याख्या कीजिए।
2. विभाषा पृष्टप्रतिवचने हेः सूत्र की व्याख्या कीजिए।
3. आम्रेडितं भर्त्सने सूत्र की व्याख्या कीजिए।
4. दीर्घादटि समानपदे सूत्र की व्याख्या कीजिए।
5. पातौ च बहुलम् सूत्र की व्याख्या कीजिए।
6. निसस्तपतावनासेवने वार्तिक की व्याख्या कीजिए।
7. सनोतेरनः सूत्र के व्याख्या कीजिए।

पाठगतप्रश्नानाम् उत्तराणि

24.1

1. यज्ञकर्मणि
2. उपदेशवाक्य या निर्देशवाक्य में।
3. पृष्टप्रतिवचन में।
4. भर्त्सना अर्थ में।
5. अङ्गशब्द से युक्त तिङन्त।
6. लौकिकसंस्कृत में।

7. सत्कार इत्यर्थः।

8. अन्त्य का ग्रहण।

9. दीर्घादटि समानपदे इति।

24.2

10. आतोऽटि नित्यम् से।

11. प्रश्च आम्रेडितञ्च प्राम्रेडिते, नप्राम्रेडिते अप्राम्रेडिते, तयोः अप्राम्रेडितयोः इति।

12. कः करत्करतिकृधिकृतेश्वनदितेः इत्यनेन।

13. षष्ठी विभक्ति।

14. पातौ च बहुलम्।

15. पतिश्च पुत्रश्च पृष्ठश्च पारश्च पदञ्च पयः च पोषश्च इति पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषाः, तेषु पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु इति

16. षष्ठ्याः।

17. सनोतेरनः।

18. छन्दस्यृदवग्रहात् इति।

--चौबिसवां पाठ समाप्त--

टिप्पणी

इस पुस्तक में स्थित सूत्रों की सूची

(अकारादिक्रम से)

पाठ में स्थित - सूत्र - अष्टाध्ययीक्रम

(24.2) अग्नीत्प्रेषणे परस्य च (8.2.92)

(21.11) अङितश्च।। (6.4.103)

(20.13) अङ्ग इत्यादौ च।। (6.1.119)

(24.5) अङ्गयुक्तं तिङाकाङ्क्षम्।। (8.2.96)

(24.9) अनन्त्यस्यापि0। (8.2.105)

(24.7) अनुदात्तं प्रश्नान्ताभि0। (8.2.100)

(23.3) अनो नुट्।। (8.2.16)

(17.14) अन्येभ्योऽपि दृश्यते।। (3.3.130)

(21.2) अन्येषामपि दृश्यते।। (6.3.137)

(20.3) अमु च छन्दसि।। (5.4.12)

(23.6) अम्ररूधरवरित्युभयथा0।। (8.2.70)

(16.4) अयस्मयादीनि च्छन्दसि।। (1.4.20)

(20.14) अवपथासि च।। (6.1.121)

(17.9) अवयाः श्वेतवाः पुरोडाश्च।। (8.2.67)

(17.8) अवे यजः।। (3.2.72)

(23.14) अश्विमानण्

(22.1) आज्जसेरसुक्।। (7.1.50)

(17.19) आत ऐ।। (3.4.95)

(17.11) आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च।। (3.2.74)

(24.11) आतोऽटि नित्यम्।। (8.3.3)

(24.4) आम्रेडितं भर्त्सने।। (8.2.95)

(20.22) इकः सुञि।। (6.3.134)

(24.16) इडाया वा।। (8.3.54)

(17.16) इतश्च लोपः परस्मैपदेषु।। (3.4.97)

(21.21) इदन्तो मसि।। (7.1.46)

(22.5) ई च द्विवचने।। (7.1.77)

(18.8) ईश्वरे तोसुन्कसुनौ। (3.4.13)

(24.8) उपरिस्विदासीदिति च।। (8.2.102)

(19.12) उपसर्गाच्छन्दसि0।। (5.1.118)

(18.1) उपसंवादाशङ्कयोश्च।। (3.4.8)

(20.6) ऋतश्छन्दसि।। (5.4.158)

(19.3) ओजसोऽहनि यत्खौ।।

टिप्पणी

(4.4.126)

(23.8) ओमभ्यादाने।। (8.2.87)

(20.21) ओषधेश्च विभक्ताव0।।

(6.3.132)

(24.13) क:करत्करतिकृधिकृ0।।

(8.3.50)

(18.14)

कद्रुकमण्डल्वोश्छन्दसि।।

(4.1.71)

(16.15) कृमृदुरुहिभ्यश्छन्दसि।।

(3.1.59)

(21.16) क्त्वापि च्छन्दसि।।

(7.1.38)

(21.22) क्त्वो यक्।। (7.1.47)

(19.5) ख च।। (4.4.132)

(20.9) खिदेश्छन्दसि।। (6.1.52)

(22.3) गो: पादान्ते।। (7.1.57)

(22.8) ग्रसित-स्कभित0।।

(7.2.34)

(16.9) चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि।।

(2.3.63)

(17.13) छन्दसि गत्यर्थेभ्य:।।

(3.3.126)

(23.9) छन्दसि घस्।। (5.1.106)

(20.5) छन्दसि च।। (5.4.142)

(20.19) छन्दसि च।।

(6.3.126)

(18.15) छन्दसि ठञ्।।

(4.3.19)

(17.1) छन्दसि निष्टर्क्यदेवहूय0।।

(4.4.130)

(16.5) छन्दसि परेऽपि।। (1.4.81)

(16.1) छन्दसि

पुनर्वस्वोरेकवचनम्।। (1.2.61)

(17.2) छन्दसि वनसनरक्षिमथाम्।।

(3.2.27)

(24.12) छन्दसि

वाऽप्राम्रेडितयो:।। (8.3.49)

(18.2) छन्दसि शायजपि।।

(3.1.84)

(17.3) छन्दसि सह:।। (3.2.63)

(23.2) छन्दसीर:।। (8.2.15)

(21.6) छन्दस्यपि दृश्यते।।

(6.4.73)

(22.4) छन्दस्यपि दृश्यते।।

(7.1.76)

(18.4) छन्दस्युभयथा।। (3.4.117)

(21.3) छन्दस्युभयथा।। (6.4.5)

(21.8) छन्दस्युभयथा।। (6.4.86)

(24.18) छन्दस्यृदवग्रहात्।।

(8.4.26)

(17.6) जनसनखनक्रमगमो विट्।।

(3.2.87)

(21.5) जनिता मन्त्रे।। (6.4.53)

(18.2) ढश्छन्दसि।। (4.4.106)

(21.2) तस्य तात्।। (7.1.44)

(20.7) तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य।।

(6.1.7)

(18.5) तुमर्थे से सेनसे0।। (3.4.9)

(16.7) तृतीया च होश्छन्दसि।।

टिप्पणी

(3.1.123)

(20.1) थट् च छन्दसि।। (5.2.50)

(22.15) दाधर्तिदर्धर्तिद0।।

(7.4.42)

(18.13) दीर्घजिह्वी च छन्दसि।। (4.1.59)

(24.1) दीर्घादटि समानपादे।। (8.3.9)

(22.12) दुरस्युद्र विणस्यु0।। (7.4.36)

(18.25) दूतस्य भागकर्मणी।। (4.4.120)

(18.6) दृशे विख्ये च।। (3.4.11)

(16.8) द्वितीया ब्राह्मणे।। (2.3.60)

(18.18) द्व्यचश्छन्दसि।। (4.3.150)

(20.23) द्व्यचोऽतस्तिङ:।। (6.3.135)

(19.8) नक्षत्राद्ध:।। (4.4.141)

(23.5) नसत्तनिषत्तानुत्त0।। (8.2.61)

(23.4) नाद्धस्य।। (8.2.17)

(23.12) नित्यं छन्दसि (4.1.46)

(18.11) नित्यं छन्दसि।। (4.1.46)

(22.11) नित्यं छन्दसि।। (7.4.8)

(21.1) निपातस्य च।। (6.3.136)

(21.15) नेतराच्छन्दसि।। (2.3.3)

(18.19) नोत्वद्वर्ध्रबिल्वात्।। (4.3.151)

(24.14) पातौ च बहुलम्।। (8.3.52)

(23.16) पाथोनदीभ्यां ड्यण् (4.4111)

(18.22) पाथोनदीभ्यां ड्यण्। (4.4.111)

(20.17) पितरामातरा च छन्दसि।। (6.3.33)

(24.6) पूर्वं तु भाषायाम्।। (8.2.98)

(23.1) प्रसमुपोद: पादपूरणे।। (8.1.6)

(18.24) बर्हिषि दत्तम्।। (4.4.119)

(20.4) बहुप्रजाश्छन्दसि च।। (5.4.123)

(16.11) बहुलं छन्दसि।। (2.4.39)

(16.13) बहुलं छन्दसि।। (2.4.73)

(16.14) बहुलं छन्छसि।। (2.4.76)

(17.12) बहुलं छन्दसि।। (3.2.88)

(20.2) बहुलं छन्दसि।। (5.2.122)

(20.8) बहुलं छन्दसि।। (6.1.34)

(21.14) बहुलं छन्दसि।।

टिप्पणी

(7.1.26)
(22.6) बहुलं छन्दसि।। (7.1.103)
(21.13) बहुलं छन्दसि।।
(7.1.8)
(22.1) बहुलं छन्दसि।। (7.3.97)
(22.17) बहुलं छन्दसि।।
(7.4.78)
(21.7) बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि।।
(6.4.75)
(18.21) भवे छन्दसि।।
(4.4.110)
(23.7) भुव श्च महाव्याहृते:।।
(8.2.71)
(18.12) भुव श्च।। (4.1.47)
(19.1) मत्वर्थे मासतन्वो:।।
(4.4.128)
(19.2) मधोर्ञ च।। (4.4.129)
(17.7) मन्त्रे श्वेतवहोक्थ0।।
(3.2.71)
(20.2) मन्त्रे सोमा श्वेन्द्रिय0।।)
(6.3.131)
(21.12) मन्त्रेष्वाङ्यादेरात्मन:।।
(6.4.141)
(23.1) मये च (4.4.138)
(23.13) मायायामण्
(4.4.124)
(22.9) मीनातेर्निगमे।। (7.3.81)
(21.19) यजध्वैनमिति च।।
(7.1.43)
(16.1) रजे श्च करणे।। (2.3.63)

(7.1.10)
(18.1) रात्रे श्चाजसौ।। (4.1.31)
(18.26)
रेवतीजगतीहविष्याभ्य:0।।
(4.4.122)
(17.15) लिङर्थे लेट्।। (3.4.7)
(17.17) लेटोऽडाटौ।। (3.4.64)
(21.18) लोपस्त आत्मनेपदेषु।।
(7.1.41)
(18.16) वसन्ताच्च।। (4.3.20)
(19.7) वसो: समूहे च।। (4.4.140)
(17.4) वह श्च।। (3.2.64)
(21.1) वा छन्दसि।। (3.4.88)
(20.11) वा छन्दसि।।
(6.1.106)
(21.4) वा षपूर्वस्य निगमे।।
(6.4.9)
(23.11)
विचार्यमाणानाम्।। (8.3.97)

(17.1) विजुपे छन्दसि।। (3.2.73)
(22.13) विभाषा छन्दसि।।
(7.4.44)
(24.3) विभाषा पृष्टप्रतिवचने हे:।।
(8.2.93)
(16.2) विशाखयो श्च।। (1.2.62)
(19.4) वेशोयशआदेर्भगाद्यल्।।
(4.4.131)
(18.3) व्यत्ययो बहुलम्।। (3.1.85)
(16.6) व्यवहिता श्च।। (1.4.82)

(24.1) ये यज्ञकर्मणि।। (8.2.88)

(18.7) शकि णमुल्कमुलौ।। (3.4.12)

(20.1) शीर्षश्छन्दसि।। (6.1.60)

(20.12) शेश्छन्दसि बहुलम्।। (6.1.70)

(22.2) श्रीग्रामण्योश्छन्दसि।। (7.1.56)

(21.9) श्रुशृणुपृकृवृभ्यश्छन्दसि।। (6.4.102)

(16.3) षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा।। (1.4.9)

(24.15) षष्ठ्याः पतिपुत्रपृष्ठ0।। (8.3.53)

(17.18) स उत्तमस्य।। (3.4.68)

(18.23) सगर्भसयूथसनुताद्यन्।। (4.4.114)

(20.18) सध मादस्थयोश्छन्दसि।। (6.3.96)

(24.17) सनोतेरनः।। (8.3.108)

(19.11) संपरिपूर्वात् ख च।। (5.1.82)

(19.1) सप्तनोऽञ्छन्दसि।। (4.1.61)

(23.15) समुद्राभ्राद्धः (4.4.118)

(19.9) सर्वदेवात्तातिल्।। (4.4.142)

(22.16) ससूवेति निगमे।। (7.4.74)

(17.2) सिब्बहुलं लेटि।। (3.1.34)

(22.14) सुधितवसुधित0।। (7.4.45)

(21.17) सुपां सुलुक्पूर्वसव0।। (7.1.39)

(18.9) सृपितृदोः कसुन्।। (3.1.17)

(19.6) सोममर्हति यः।। (4.4.137)

(20.15) स्यश्छन्दसि बहुलम्।। (6.1.133)

(17.5) हव्येऽनन्तः पादम्।। (3.2.66)

(16.12) हेमन्तशिशिरावहोरात्रे0।। (2.4.28)

(18.17) हेमन्ताच्च।। (4.3.21)

(20.16) ह्रस्वाच्चन्द्रोत्तरपदे0।। (6.1.151)

(22.7) ह्रु ह्वरेश्छन्दसि।। (7.2.31)